eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

लैंगिक असमानता के ऐतिहासिक एवं सामाजिक सन्दर्भ

डॉ0 अनुभा श्रीवास्तव[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर– राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला स्ना0 महाविद्यालय, बिन्दकी, फतेहपुर उ0प्र0

Received: 21 Jan 2026 Accepted & Reviewed: 25 Jan 2026, Published: 31 Jan 2026

Abstract

लैंगिक असमानता मानव सभ्यता के विकास के साथ गहराई से जुड़ी एक जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिघटना है। प्राचीन काल से ही समाजों में स्त्री–पुरुष के मध्य अधिकारों, अवसरों, संसाधनों और सामाजिक भूमिकाओं का असमान वितरण देखने को मिलता है। ऐतिहासिक रूप से पितृसत्तात्मक संरचनाओं, धार्मिक मान्यताओं, परंपराओं और आर्थिक व्यवस्थाओं ने लैंगिक असमानता को संस्थागत रूप प्रदान किया। सामाजिक संदर्भों में यह असमानता शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, राजनीति और निर्णय–निर्माण की प्रक्रियाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। आधुनिक काल में संवैधानिक प्रावधानों, महिला आंदोलनों और अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद लैंगिक असमानता विभिन्न रूपों में विद्यमान है। यह शोध–अध्ययन लैंगिक असमानता के ऐतिहासिक विकास, सामाजिक कारणों तथा इसके समकालीन प्रभावों का विश्लेषण करता है और यह स्पष्ट करता है कि समानता की स्थापना के लिए संरचनात्मक एवं मानसिक दोनों स्तरों पर परिवर्तन आवश्यक है।

मुख्य शब्द – लैंगिक असमानता, पितृसत्ता, सामाजिक संरचना, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, स्त्री–पुरुष समानता, महिला अधिकार, सामाजिक न्याय

Introduction

भारत अपनी स्वतंत्रता के सात दशक बिता चुका है और इन वर्षो में भारत में बहुत कुछ बदला। इस मजबूत गणतंत्र ने सभी को अपनी इच्छा से जीने की, सोचने की, विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी और सभी ने इसका मन चाहे रूप से उपभोग किया परन्तु अभी भी भारत में एक वर्ग ऐसा है जो इस सुखानुभूति से वंचित हैं और वह है स्त्रियाँ। हजारों वर्षों की यह मान्यता कि स्त्री को हर जगह पर पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती है, परिवर्तित नहीं हुई है। स्त्री और पुरुष के मध्य भेद आज भी कायम है। यह तथ्य उन आंकड़ों से उद्‌घाटित होता है जो विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा समय समय पर कराये गए सर्वेक्षण से सामने आते हैं। ये आंकड़े बताते हैं कि भारतीय महिलाएं घर और दफ्तर दोनों जगह इस भेदभाव की शिकार होती है फिर चाहे वह काम के बढ़िया अवसर हो, शीर्ष पदों तक पहुँच या पदोन्नती के समान अवसर। आज भी भारतीय समाज में महिलाओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। कुछ चंद महिलाओं की उपलब्धियों पर अपनी पीठ थपथपाने वाला देश इस बात से अनभिज्ञ जान पड़ता है कि वह स्त्री जो अपनी योग्यता और कुशलता से एक कुशल प्रशासक की भाँति अपने परिवार और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रही है और जिसके इस योगदान के बिना समाज तथा देश कदापि उन्नति नहीं कर सकता वह आज भी कदम कदम पर हिंसा का शिकार हो रही है भारत ही क्यों विश्व का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जहाँ महिलाएं पूर्ण रूप से सुरक्षित हो। यह संभव है कि विकसित देशों की अपेक्षा विकासषील देशों में महिलाओं के प्रति हो रही हिंसा की दर अधिक हो पर आर्थिक एवं सामाजिक तौर पर विकसित माने जाने वाले देश अमेरिका, ब्रिटेन, जापान आदि भी इससे अछूते नहीं हैं।

लैंगिक असमानता– लैंगिक असमानता से तात्पर्य लैंगिक असमानता का तात्पर्य लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ होने वाला भेदभाव है परंपरागत रूप से समाज में स्त्रियों को एक कमजोर वर्ग के रूप में हमेशा देखा जाता रहा है वह घर और बाहर दोनों जगह पर शोषण अपमान तथा भेदभाव से पीड़ित रहती हैं स्त्रियों के खिलाफ भेदभाव दुनिया में हर जगह प्रचलित है विश्व लैंगिक अंतराल सूचकांक में भारत पिछले साल की अपनी स्थिति से दो अंक नीचे आ गया है और वहां 148 देश में 131 वे स्थान पर है इससे साफ तौर पर अंदाजा लगाया जा सकता है कि हमारे देश में लैंगिक भेदभाव की जगह कितनी मजबूत और गहरी हैं। लैंगिक असमानता के विभिन्न क्षेत्रों की हम बात करें तो इसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र के साथ ही साथ वैज्ञानिक, मनोरंजन, चिकित्सा तथा खेल क्षेत्र भी प्रमुख है।

किसी भी समाज का स्वरूप वहाँ की नारी की स्थिति पर निर्भर करता है यदि समाज में नारी की स्थिति सुदृढ़ एवं सम्मानजनक है तो निसंदेह वह समाज मजबूत होगा और देश भी समृद्ध होगा । भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा में स्त्रियों को सदा से सम्मान मिलता रहा है अर्धनारीशवर की परिकल्पना युगों पहले भारत ने ही की थी जिसने स्त्री पुरुषों को सामान, पूरक व अनुपूरक दर्जा प्रदान किया था।

लैंगिक असामनता का ऐतिहासिक संदर्भ– भारत में स्त्रियो की स्थिति समय समय पर बदलती रही है। स्त्रियो की स्थिति के बारे में यदि हम प्रारंभ से प्रारंभ करें तो देखेंगे कि भारतीय सभ्यता के उत्कृष्ट काल वैदिक काल में नारियों का महत्वपूर्ण स्थान था। भारतीय समाज में स्त्रियों का स्थान पूजनीय रहा है। समाज तथा सभ्यता के विकास में स्त्रियों का योगदान सर्वोपरी रहा है । भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बारे में कई प्रकार की अवधारणाएं हैं। भारतीय पौराणिक संदर्भ में स्त्री को देवी का स्थान प्राप्त है शक्ति की देवी दुर्गा, कला की देवी सरस्वती, धन की देवी लक्ष्मी मानी गई है और आज भी उनकी मान्यता है। प्राचीन भारत के इतिहास में गार्गी और मैत्रेयी का विदुषियों के रूप में उल्लेख है। प्राचीन काल में स्त्रियों के लिए प्रचलित था– "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवता"

स्त्रियां यधपि की शारीरिक रूप से पुरुषों से कमजोर और कोमल मानी गई है किंतु यह प्रकृति का नियम है कि स्त्री जो इस सृष्टि की जननी है जिसे बालक को जन्म देना पड़ता है उसकी और उसके बच्चे की देखभाल का दायित्व पुरुष पर होता है। प्रसवकाल तथा नवजात शिशु के लालन–पालन के समय पुरुष के द्वारा स्त्री की सेवा करना तथा बाहरी आक्रमण से उसकी रक्षा करना यह प्रकृति द्वारा पुरुष का कर्तव्य माना गया है और यह केवल मनुष्य में ही नहीं बल्कि समस्त प्रकार के जीवो में यह देखा जा सकता है कि नर मादा की देखभाल करता है इसी प्राकृतिक आधार पर हमारे ऋषि मुनियों ने यह अवधारणा निरूपित की

"पिता रक्षति कौमार्य, भर्ता रक्षति यौवन, रक्षति स्थविरे पुत्राः नस्त्री स्वातन्त्यमहति।" अर्थात कुमारी अवस्था में पिता रक्षा करता है यौवन में पति, वृद्धावस्था में पुत्र, स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं रहती।

इस काल में स्त्रियों को समाज में सर्वोपरि स्थान प्राप्त था और उन्हें सुख, समृद्धि, शांति, वैभव तथा ज्ञान का प्रतीक माना जाता था। स्त्रियों का परिवार तथा समाज में महत्वपूर्ण स्थान था उन्हें सभी तरह की आजादी प्राप्त थी। वेद पढ़ने के अधिकार के साथ ही यज्ञ करने व कराने का भी उन्हें अधिकार था। वे अपनी इच्छा से विवाह करती थी और विधवाएं पुनर्विवाह करने के लिये स्वतंत्र थी स्त्रियों की सहभागिता के अभाव में किसी भी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान को पूर्ण नहीं माना जाता था। इस काल में बाल विवाह

तथा पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथाओं का भी प्रचलन नहीं था इसीलिए वैदिक काल को स्त्रियो का स्वर्णिकाल कहा जाता है।

वैदिक काल में भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति उन्नत थी। ऋग्वेद में पति–पत्नी दोनों मिलकर यज्ञ करते थे। बिना स्त्री के धार्मिक कार्य अधूरा माना जाता था। ऋग्वेद में 'दंपति' शब्द का प्रयोग हुआ है इसका शब्दार्थ है दम + पति अर्थात घर के स्वामी। जिसमे पति से पहले पत्नी शब्द का प्रयोग किया गया है यह शब्द उस काल में स्त्रियों की उच्च स्थिति का बोध कराता है क्योंकि इसमें पति और पत्नी दोनों को ही एक साथ घर का स्वामी माना गया है। वैदिक काल में कन्या अपनी इच्छा से विवाह कर सकती थी तथा बाल विवाह पर्दा प्रथा, सती प्रथा जैसी कुप्रथाएं नहीं थी। विधवाएं पुनर्विवाह भी कर सकती थी। अथर्ववेद में वर्णन है कि "नव वधू तू जिस घर में जा रही है वहां की तू साम्राज्यी है तेरे ससुर, सास ,देवर वह अन्य सभी तुझे साम्राज्यी समझते हुए तेरे शासन में आनंदित होंगे।" यजुर्वेद के अनुसार स्त्रियों को संध्या करने तथा उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त था। पी .एन. प्रभु के शब्दों में "जहां तक शिक्षा का संबंध था स्त्री पुरुष में कोई विशेष भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियो की स्थिति में गिरावट आने लगी। गौतमी धर्मसूत्र में जो संभवता उसी काल मैं लिखा गया यह व्यवस्था की गई कि रजोदर्शन से पूर्व ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए। कुछ ग्रन्थो में तो यहां तक कहा जाने लगा की नग्न रहने में संकोच अनुभव होने की अवस्था से पूर्व ही लड़की का विवाह हो जाना चाहिए। इतनी कम उम्र में विवाह हो जाने पर संभवता स्त्री गृह स्वामिनी जैसी स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकती थी और स्त्री तथा पुरुष की आयु में अत्यधिक अंतर होने के कारण पुरुषों में आधिपत्य का भी एक भाव स्थापित हो गया साथ ही कम आयु में विवाह हो जाने से स्त्रियों की शिक्षा में बाधा पहुंचने लगी उनके लिए वेदों का अध्ययन बंद कर दिया गया। विधवा पुनर्विवाह निषेध कर दिया गया साथ ही साथ समाज मे बाल विवाह का प्रचलन आरंभ हुआ जिसने स्त्रियों की शिक्षा को बाधित किया और उनमें शिक्षा का स्तर गिरने लगा यही से समाज में स्त्रियों की स्थिति मे गिरावट देखी जा सकती है। इस धर्म शास्त्र काल में वैदिक नियमों का परित्याग कर दिया गया और स्त्रियों को संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया इससे स्त्रियों का स्वाभिमान और आर्थिक स्वावलम्बन समाप्त हो गया और वे सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्णता से ग्रस्त हो गई।

मौर्यकाल से राजपूत युग तक स्त्री का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी में सीमित हो गया। इसी प्रकार मध्य कालीन काल जो मुगल साम्राज्य का काल था, में मुगलों से भारतीय संस्कृति एवं स्त्रियों की अस्मिता की रक्षा के संरक्षण हेतु ब्राह्मणों द्वारा कठोर नियमों को लागू किया गया। इसमें 5 से 8 वर्ष की आयु में बालिका विवाह, पर्दा प्रथा का चलन, सती प्रथा का चलन आदि प्रमुख थे। इस काल में एक पत्नी के रहते हुए दूसरी पत्नी को रखना सामाजिक प्रतिष्ठा की बात समझ जाती थी। इस प्रकार वैदिक युग की देवी नारी मध्यकाल के सामंतशाही अहंकारियों के शोषण करने के जंगली कानून के कारण हेय, पतित एवं अनाधिकारी हो गयी। स्त्रियों के मनुष्योचित अधिकारों पर आक्रमण हुआ और अनेको प्रतिबंधों ने उन्हें शक्तिहीन, विद्याहीन, साहसहीन बनाकर इतना असहाय बना दिया गया कि वह आत्मरक्षा हेतु भी दूसरों की मुखापेक्षी हो गई।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

ब्रिटिश शासन काल में भी स्त्रियो की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं हुआ। इस काल में भारतीय समाज सुधारकों द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु कुछ प्रयास किए गए जैसे राजा राम मोहन राय द्वारा बह्म समाज की स्थापना तथा सती प्रथा के विरुद्ध कानून का निर्माण करवाना। महर्षि दयानंद द्वारा आर्य समाज की स्थापना की गई जो मुख्यतः वैदिक आदर्शों की पुनर्स्थापना का प्रयास था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन बहुपत्नी विवाह परंपरा का विरोध और स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया। भारतीय समाज सुधारकों द्वारा किये गए प्रयासो के ही परिणाम स्वरूप ब्रिटिश सरकार ने स्त्रियो के विरुद्ध समाज में प्रचलित अनेक कुप्रथाओं को समाप्त करने हेतु विभिन्न कानूनों का निर्माण किया। 1829 में राजा राममोहन राय आदि के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सती प्रथा को गैरकानूनी ठहराया गया। 1856 में एक कानून द्वारा हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान की गयी। बहुत से अन्य कानूनों ने, जिनके उद्देश्य भिन्न थे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया। उदाहरण के लिये 1929 के बाल–विवाह निरोधक कानून के द्वारा विवाह की एक निम्नतम आयु निश्चित करने का प्रयत्न किया गया। हिन्दू स्त्रियों के विवाह और वैवाहिक जीवन को नियमित करने के लिये अनेक कानून बने जिनका उद्देश्य स्त्रियों की स्थिति सुधारना भी था। इन कानूनों की बहुत सी बातें 1955 के हिन्दू विवाह कानून में सम्मिलित कर ली गयी है। यह कानून महिलाओं को विवाह सम्बन्ध में पुरुषों के बराबर स्थान देता है पुरुष के समान ही. महिलायें भी विशेष परिस्थितियों में तलाक, वैधानिक पृथक्करण अथवा दाम्पत्य अधिकारों के पुनःस्थापना की माँग कर सकती है। इन कानूनों की सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इसके अनुसार यदि कोई हिन्दू पुरुष एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करें तो वह कानून की दृष्टि में अमान्य होगा और विवाह करने वाले व्यक्ति को अपराधी ठहराकर दण्डित किया जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में और भी अधिक सुधार हुआ। सरकारी, गैर–सरकारी संगठनों तथा समाज सुधारकों के प्रयासों के परिणाम स्वरूप आज भारतीय महिलाओं की स्थिति मध्यकाल की महिलाओं से कही ऊँची है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का दौर आरंभ हुआ कानूनी व्यवस्था , राजनीतिक आदर्श और पश्चिमी शिक्षा के प्रसार से समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन का संचार हुआ तथा देश में बढ़ते औद्योगिकीकरण ने लोगों के जीवन शैली को प्रभावित किया। इन सबका सम्मिलित प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर भी पड़ा। शहरी महिलाएं शिक्षा के प्रति संवेदनशील हुई है और वे रोजगार तथा आर्थिक स्वावलंबन की ओर उन्मुख है जबकि इसी दशा में अभी ग्रामीण महिलाएं पिछड़ी है लेकिन सरकारी प्रयासो और संविधान प्रदत्त अधिकारों के द्वारा उन्हे भी विकास की मुख्यधारा से जोड़ने का काम किया जा रहा है और उनकी स्थिति में सुधार पर बल दिया जा रहा है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की परंपरागत स्थान की चर्चा करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि हम किस समय के समाज की चर्चा कर रहे हैं। एक कल में भी समाज के विभिन्न स्तरों में स्त्रियों की स्थिति और कार्यों में बहुत अंतर पाया जाता है। आज भी निम्न जातियों की स्त्रिया उच्च जातियों की स्त्रियों की अपेक्षा आर्थिक रूप से अधिक स्वतंत्रता दिखाई देती है अधिकतर जनजातियों में स्त्रियों का जीवन अपेक्षाकृत रूप से स्वतंत्र प्रतीत होता है।

पितृसत्तात्मक समाज– पितृसत्ता का शाब्दिक अर्थ है पिता या कुलपति (परिवार के बुजुर्ग पुरुष) की सत्ता या शासन। शुरुआत में इस शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार के परिवार के लिए किया जाता था जिसमें

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

पुरुष की प्रधानता होती थी । यह एक बड़ा संयुक्त परिवार होता है जिसका प्रमुख या सर्वेसर्वा परिवार का एक बुजुर्ग पुरुष होता था। इस परिवार में इस पुरुष के नीचे स्त्रियों, छोटे पुरुष, बच्चे, दास घरेलू नौकर सभी होते थे। आजकल इस शब्द का प्रयोग आमतौर पर पुरुष सत्ता या उन शक्ति संबंधों को बताने के लिए किया जाता है जिसमे पुरुषों की प्रधानता होती है और उनका घर की स्त्रियो पर नियंत्रण होता है यह कह सकते हैं कि यह एक ऐसी व्यवस्था का द्योतक है जिससे अनेक तरीकों से स्त्रियों को निचले दर्जे पर रखा जाता है। इस पितृसत्तात्मक सत्ता के अंतर्गत स्त्रियों किसी भी वर्ग से क्यों न हो लेकिन वो अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी मे अनेक तरीके से पुरुषों के दवारा नियंत्रित और शोषित होती रहती। परिवार, काम की जगह और समाज सभी जगह स्त्रियों के साथ होने वाला भेदभाव बेकद्री ,अपमान ,नियत्रंण, शोषण, जुल्म और हिसा उसके अनेक रूप है।

वास्तव में पितृसत्ता सिर्फ एक शब्द नहीं बल्कि उससे कहीं अधिक है नारीवादी इसे एक धारणा के रूप में इस्तेमाल करते हैं जो अन्य धारणाओं की भाँति हमारे आसपास की सच्चाइयों को समझने में एक मददगार माध्यम है। विद्वानों के द्वारा इसे अलग अलग तरीके से परिभाषित भी किया गया है–

'जूलिएट मिशन' जो एक नारीवादी मनोवैज्ञानिक है उन्होंने पितृसत्ता शब्द का इस्तेमाल पारिवारिक संबंधों की उस व्यवस्था के लिये किया है जिसके अंतर्गत पुरुष स्त्रियों की अदला बदली का हक रखते हैं और उस ताकत के लिए किया है जिसका इस्तेमाल इस व्यवस्था के तहत पिता करते हैं वे कहती हैं की यही वह ताकत है जो स्त्रियों में 'हीन भावना' पैदा करने के लिए जिम्मेदार है।

सिल्विया वैल्बी अपनी किताब थियोराइज़िंग पैट्रियार्की में कहती हैं "यह सामाजिक ढांचों और रिवाजों की एक व्यवस्था है जिसके अंतर्गत पुरुष स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व जमाते हैं उनका दमन और शोषण करते हैं। इनका यह भी कहना है कि पितृसत्ता को एक व्यवस्था के रूप में समझना जरूरी है क्योंकि तभी हम स्त्री और पुरुष के जैविकीय फर्क को हर असमानता के लिए जिम्मेदार मानना छोड़ेंगे (वह फर्क कहता है कि चूँकि पुरुष स्त्रियों का शरीर अलग अलग ढंग से बना इसलिए उनकी भूमिकाएं अलग हैं) और यह मानना भी छोड़ेंगे कि हर पुरुष सदैव ऊंची स्थिति में होता है और हर स्त्री नीचि स्थिति में।

'सिल्विया वैल्वी' कहती हैं कि इसव्यवस्था से यह 'विचारधारा' जुड़ी है कि पुरुष स्त्रियों से बेहतर है। स्त्रियों को पुरुषों की संपत्ति की तरह उनके नियंत्रण में रहना चाहिए। कुछ दक्षिण एशियाई भाषाओं में पति के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले शब्द हैं– स्वामी, शौहर, पति, मालिक। ये सब शब्द ऊँच नीच का संबंध दर्शाते हैं स्त्रियों पर पति का अधिकार जतलाते है। इन शब्दों से ही पता चल जाता है कि पति पत्नी का रिश्ता गैर बराबरी का ही बनाया गया है। वास्तव में सामान्य जीवन में लड़कियों तथा स्त्रियों के साथ किया जाने वाला असमानता का व्यवहार पित्रसत्तात्मक नियंत्रणों के ही विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है जो निम्नलिखित है–

1. परिवार में बेटे के जन्म को महत्त्व देना
2. लड़की और लड़की के बीच भोजन के बंटवारे में लड़कियों के साथ किया जाने वाला भेदभाव
3. परिवार में स्त्रियों और बच्चियों पर घरेलू काम का अत्यधिक बोझ होना।
4. लड़के और लडकियों के लिए परिवार में पढ़ाई के समान अवसरों का अभाव
5. लड़कियों को आने जाने या मिलने जुलने की आज़ादी न होना।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

6. पत्नी को घर में विभिन्न रूपों में दी जाने वाली प्रताड़ना।
7. घर की लड़कियों और स्त्रियो पर पुरुष का पूर्ण नियंत्रण होना।
8. काम के स्थान पर स्त्रियों के साथ होने वाला शोषण और यौन उत्पीड़न
9. स्त्रियों के लिए उत्तराधिकार या संपत्ति के अधिकार का अभाव होना
10. स्त्रियों के शरीर और उनकी यौनिकता पर पुरुष का नियंत्रण होना
11. इसी प्रकार स्त्रियों की जनन क्षमता पर नियंत्रण तथा प्रजनन अधिकारों का अभाव आदि।

जब हम अलग अलग अनुभवों पर सोच विचार करते हैं तो जो साझा तस्वीर बनती है वह यह है कि हममे से हर एक स्त्री को किसी न किसी रूप में इस प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ा है और पुरुषों के मुकाबले में लगातार स्त्रियों को छोटा और कमतर बताये जाने का अनुभव और एहसास उनके आत्मसम्मान,आत्म महत्त्व और आत्मविश्वास को खत्म कर देता है। ऐसे रिवाज और कायदे जो हमें पुरुषों से नीचे मानते हैं सभी जगह मौजूद हैं जैसे हमारे परिवारों, समाजिक सम्बन्धो, धर्म, कानून पाठशालाओं, स्कूली किताबों जनसंचार माध्यमों, कारखानों और दफ्तरों में। अपने अनुभवों को साझा करते हैं तो यह समझ में आता है कि यहाँ जो भी भेदभाव स्त्रियों के साथ हो रहा है ये हमारी खराब किस्मत या कुछ दुष्ट पुरुषों के द्वारा किए गए शोषण या दमन के कारण नहीं है जो व्यवहार किसी न किसी रूप में हर स्त्री के साथ हो रहा है वह न तो बदकिस्मती का नतीजा हो सकता है और न ही दुष्ट पुरुषों की कार्रवाई बल्कि वह एक व्यवस्था के तहत है। यह व्यवस्था है पुरुष प्रधानता, पुरुष उच्चता और पुरुष नियंत्रण की जिसमें स्त्रियों का दर्जा हमेशा से कमजोर और अधिकारहीन माना गया है।

<u>पितृसत्तामक समाज और स्त्री की स्थिति –</u> यह माना जाता है कि प्रारंभिक मानव समाज में परिवार तथा बच्चों की देखभाल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए मां/स्त्री को बच्चों के लालन पालन की जिम्मेदारी सौंप गई तथा पिता /पुरुष ने प्रसव काल में शिकार कर भोजन जुटाने की जिम्मेदारी संभाली। इसी को परिवार व्यवस्था के भीतर श्रम विभाजन का स्रोत भी माना जाता है। परवर्ती काल में उत्पादन के औजारों के आविष्कार के साथ–साथ इस परिवार व्यवस्था में स्त्री और पुरुष की भूमिका ही उनके जीवन की उपलब्धि बनती चली गई परंतु तब यह श्रम विभाजन लिंगीय असमानता पर आधारित नहीं था हालांकि स्त्री पुरुष पर शुरू से ही निर्भर थी किंतु सभ्यता के विकास के सैकड़ो सालों तक यह निर्भरता बच्चों के लालन–पालन की आवश्यकता तथा उत्पादन की तकनीक के अविकसित होने की वजह से ही थी।

अब प्रश्न यह आता है कि यह सहज स्वाभाविक परिवार/ समाज व्यवस्था ने पितृ सत्तात्मक रूप कैसे धारण किया इस संबंध में अनेकों अध्ययन 19वीं सदी के उत्तरार्ध से ही किए जा रहे हैं उपलब्ध साक्ष्यो को जोड़कर गर्दा लर्नर ने पितृसत्ता का इतिहास लिखा है उनके अनुसार "नवपाषाण काल में कृषि के विकास के साथ–साथ खेतों में काम करने के लिए अधिक हाथों की आवश्यकता हुई इस कमी को पूरा करने के लिए कबीलों के बीच स्त्रियों का विनिमय होने लगा इस प्रकार के विनिमय से कबीलों के आपसी संबंध भी सुधर गए इसके परिणाम स्वरुप जहां पुरुष समूह का स्त्रियों पर अधिकार हो गया वहीं स्त्री समूह का पुरुषों पर कोई अधिकार नहीं रहा। इस प्रकार स्त्रियां पुरुषों के हाथों जमीन की तरह एक संसाधन बनकर रह गई । पशुपालक समुदायों में यह प्रवृत्ति और भी प्रखर थी आरंभ में कबीलों में स्त्रियों की मांग की पूर्ति विनिमय या खरीद फरोख्त के माध्यम से की जाती थी। बाद में वे या तो युद्ध में जीती जाने लगी

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

या गुलाम के रूप में खरीदी जाने लगे । ऐसी स्त्रियों का आर्थिक शोषण होने के साथ ही साथ उनका यौन शोषण भी होने लगा उनके बच्चे मालिक की संपत्ति होते थे इस प्रकार पुरुष से पहले स्त्री गुलाम बनी। युद्ध में पराजित पुरुषों को मार दिया जाता था । गर्दा लरनर कहती है कि स्त्रियों को गुलाम बनाने की यह प्रक्रिया समाज के वर्गों में विभक्त होने तथा वर्गों के बीच शोषण से पहले आरंभ हो गई थी। प्रारंभिक अवस्था में वर्गों की आपसी भिन्नताएं पितृसत्तात्मक रिश्तों के रूप में ही उभरी। वर्ग लिंग से भिन्न न होकर लिंग के माध्यम से ही मुखरित हुआ।

गर्दा लिखती है कि ईशा के 2000 साल पूर्व से ही मेसोपोटामिया में गरीब अपनी आर्थिक हालत सुधारने के लिए अपनी बेटियों को शादी या वेशयावृत्ति के लिए बेच देते थे । उस समय यदि पति या पिता अपना ऋण चुकाने में असमर्थ होता था तो वह अपनी पत्नी तथा बच्चों को सारी उम्र के लिए गिरवी रख देता था । वह आगे कहती है कि स्त्री को पण्य/ उपभोक्ता वस्तु नहीं बनाया गया वरन उसकी योनि तथा प्रजनन क्षमता को व्यवस्था में क्रय विक्रय की सामग्री बना दिया। अपनी योनि जो उनके शरीर का एक हिस्सा है, उस पर बाहरी नियंत्रण होने के कारण स्त्री पर मनोवैज्ञानिक दबाव बने। निसंदेह कहा जा सकता है कि स्त्रियों के लिए पहले लिंग आधारित भूमिका विवाह संतानोत्पत्ति हेतु विनिमय थी। इस विनिमय में उसका कोई हस्ताक्षेप नहीं होता था। स्त्री के लिए गुलामी की प्रथा के आरंभ से ही वर्ग शोषण का अर्थ यौन शोषण भी रहा है। आदिकाल से ही गुलाम स्त्री को अपने मालिक के लिए किसानी, मजदूरी करने के साथ–साथ यौन सेवाएं भी देनी होती थी। इस प्रकार इतिहास के हर काल में हर वर्ग दो उप वर्गों स्त्रियों और पुरुषों में विभाजित रहा है।

संभ्रांत स्त्री भी यदि अपने समाज के मर्यादित यौन संबंधी नियमों का उल्लंघन करती थी तो उसकी हैसियत एक पवित्र स्त्री से पतित की हो जाती थी। आर्थिक दमन और शोषण जितना स्त्री योनि के वस्तु करण तथा उसकी श्रम शक्ति और प्रजनन क्षमता का पुरुषों द्वारा हरण पर निर्भर था उतना ही संसाधनों के एकत्रीकरण पर।

गर्दा लर्नर की ही भांति मार्क्सवादी विचारक एंगेल्स ने सन 1888 में अपनी पुस्तक 'परिवार ,निजी संपत्ति तथा राज्य की उत्पत्ति "में स्त्री की अधीनता के इतिहास को तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप को रेखांकित किया है। एंगेल्स कहते हैं कि प्रागैतिहासिक काल में यौन संबंधों में कोई नियंत्रण नहीं था प्रत्येक स्त्री का प्रत्येक पुरुष से यौन संबंध हो सकते थे । धीरे–धीरे करीबी रिश्तेदारों माता–पिता और बच्चों के बीच तथा सगे भाई बहनों के बीच यौन संबंधों में रोक लगा दी गई और कालांतर में इस सीमा के अंतर्गत दूर के रिश्तेदार भी आ गए धीरे–धीरे एक कबीले की स्त्रियों का दूसरे कबीले के पुरुषों से सामूहिक विवाह होने लगा। यह सभी समाज अपने स्वरूप में अभी तक मातृ सत्तात्मक थे संबंधियों के बीच वर्जना बढ़ने के साथ–साथ हर प्रकार का सामूहिक विवाह भी होना अब असम्भव हो गया। वैवाहिक संबंध दो कबीलो के बीच में न होकर दो व्यक्तियों के बीच स्थापित होने लगे कबीलो के बीच होने वाले सामूहिक विवाह में पुरुषों को स्त्रियों की कमी नहीं रहती थी किंतु बाद में उन्हें यह कमी खलने लगी । इसको पूरा करने के नियत ही स्त्री को खरीद कर अथवा अगवा कर शादी करने का रिवाज चल पड़ा किंतु अभी तक भी कबीले के मध्य विवाह व्यवस्था में समाज का स्वरूप मातृसत्तात्मक था जिसमें स्त्री स्वतंत्र थी तथा उसका सर्वत्र सम्मान होता थ समूह में विवाह के कारण स्त्रियों तो एक ही गोत्र की होती थी जबकि पुरुष विभिन्न गोत्रों (कबीलों) से आते थे। पशुपालन व्यवस्था के विकास के साथ–साथ कबीलो के चरित्र में

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

परिवर्तन हुए। नए सामाजिक रिश्ते बने और धीरे–धीरे परिवार का मुखिया पुरुष हो गया यह पुरुष ही गुलाम का भी मलिक था तथा परिवार के पालतू पशुओं और स्त्रियों पर भी उसका आधिपत्य था। क्योंकि भोजन की व्यवस्था करना पुरुष की जिम्मेदारी था इसलिए इस व्यवस्था में काम में आने वाले हथियारों पर भी मालिकाना हक पुरुष का ही था । स्त्री की जिम्मेदारी घर गृहस्थी चलना था। उत्तराधिकार का अधिकार अभी भी मां के कुल के आधार पर होता था। इस प्रकार बच्चे पिता की संपत्ति से वंचित रहने लगे जो इस दौरान मां की संपत्ति से अधिक होने लगी थी धीरे–धीरे संपत्ति बढ़ जाने से पिता की स्थिति परिवार में सुदृढ होती गई पिता की संपत्ति पर बच्चों का उत्तराधिकार हो इसके लिए पुरुष के उत्तराधिकारियों का उसके गोत्र का सदस्य होना आवश्यक था । इस कारण उत्तराधिकार व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन आया इस परिवर्तन की कोई निश्चित तारीख तो नहीं है किंतु कई अध्ययनो से यह सिद्ध होता है। एंगेल्स कहते हैं कि यह स्त्री की विश्व स्तर की ऐतिहासिक हार थी। पुरुष घर का स्वामी बन गया स्त्री मात्र पुरुष की इच्छाओं की पूर्ति तथा प्रजनन का माध्यम भर रह गई। इसी बिंदु पर परिवार व्यवस्था पितृसत्तात्मक हो गई। वंश की शुद्धता को बनाए रखने के लिए स्त्री का पतिव्रता होना आवश्यक था इसी निमित्त स्त्री के लिए अनेक प्रकार के बंधनो और नियंत्रण के प्रावधान हुए पुरुष का स्त्री पर पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया।

सदियों से स्त्रियां अपने आधुनिकरण की इस प्रक्रिया को गति प्रदान करती रही है इसका कारण यह है कि उनको मनोवैज्ञानिक तौर पर अपनी हीनता को आत्मसात करना सिखाया जाता रहा है हीनता का यह बोध स्त्री का संस्कार बन गया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था इस तथ्य से प्रचलित है कि स्त्रियों को उनकी क्षमता उपलब्धियों, अपने संघर्ष के इतिहास से अनभिज्ञ रखकर ही अधीन रखा जा सकता है।

एक विवाह संस्था स्थापित होने के बावजूद पुरुष ने अविवाहित लड़कियों के साथ यौन संबंध रखने की अपनी आदत को बरकरार रखा है इस आदत के परिणामस्वरुप ही वेश्यावृत्ति व्यवस्था का अस्तित्व संभव हुआ इस व्यवस्था में वेश्यागमन करने वाले पुरुष को तो कभी भी पुरुष समाज के कटघरे में नहीं खड़ा किया गया परंतु वेश्याए समाज की भर्त्सनाओ का सदैव शिकार होती आई है। पूरे नियंत्रण और कठोर सजा के बावजूद एकविवाह स्त्रियों पर पूरी तरह नहीं थोपा जा सका एकपति विवाह व्यवस्था के इतिहास में वेश्यावृति और व्यभिचार की धाराए एक दूसरे के समांतर बहती रही है।

विश्व विख्यात फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द वोउवार ने सन 1949 में द सेकंड सेक्स लिखी। इसमें वह स्त्री दमन के इतिहास को थोड़ा भिन्न रूप से प्रस्तुत करती हैं उनका यह मानना है कि जैविक बनावट के कारण मासिक धर्म, गर्भाधान एवं प्रसव की पीड़ा को समय–समय पर झेलने के कारण स्त्रियों को पुरुषों के संरक्षण की आवश्यकता होती थी। इसलिए सामान्य अवस्था में स्त्री घर और बच्चों की जिम्मेदारी के साथ–साथ तो आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी भी निभाती थी परंतु जैविक रचना के कारण इस भागीदारी में उसकी एक सीमा थी जिससे वह आगे नहीं बढ़ पाती थी जबकि इसके विपरीत पुरुष ने अपनी ऊर्जा को एक परिष्कृत व्यवस्था का विकास करने में लगाया उसका कार्य परिवार स्त्रियां तथा बच्चों की सुरक्षा से संबंधित था इसलिए वह हमेशा अपने जीवन में खतरों से घिरा रहता था और ऐसे औजारों तथा तरीको की खोज किया करता था जो उसकी ऊर्जा के व्यय को कम करें। उसकी इसी खोज ने उत्पादन के नए–नए तरीकों को इजाद किया और उसे श्रेष्ठता प्रदान की हालांकि दूसरी ओर जाति की निरंतरता को बनाए रखने के निमित्त स्त्री की प्रसव संबंधी भूमिका भी महत्वपूर्ण थी लेकिन उसको उस रूप में महत्व प्राप्त नहीं हुआ जो होना चाहिए था वह आगे कहती है कि प्रागैतिहासिक समाज में शारीरिक कमजोरी होने के

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

बावजूद स्त्री के मानवीय अस्तित्व को पूरी तरह नकारा नहीं गया था क्योंकि स्त्री की कमजोरी को सर्वमान्य बनाने वाले तंत्र संस्था और निजी सम्पत्ति का उस समय अभाव था धीरे–धीरे कृषि के विकास तथा निजी संपत्ति के विकसित होने से पुरुषों की स्थिति मजबूत होती चली गई और इस प्रक्रिया में उन्हें स्त्री को अधीन रखने तथा शोषण करने के धार्मिक, नैतिक और संस्थागत तरीके भी प्राप्त हो चुके थे। सिमोन का मानना है कि पितृसत्ता की विजय कोई आकस्मिक घटना नहीं थी वह आगे लिखती है कि मानवता के आरंभ से ही पुरुष ने अपनी जैविक विशेषता की वजह से हमेशा स्वयं को सर्वोच्च सत्ता के रूप में रखा और आज तक रखता आ रहा है उसने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का कुछ हिस्सा ही प्रकृति और स्त्री के लिए आदि युग में त्यागा था। कृषि युग के बाद उसने वापस अपनी संपूर्णता हासिल कर ली। स्त्री बाध्य हुई 'अन्य' की भूमिका निभाने के लिए । कभी वह गुलाम रही कभी देवी बनी किंतु अपने मानव रूप का चुनाव वह कभी नहीं कर सकी।

भारत में पितृसत्ता– उमा चक्रवर्ती भारत के हिंदू सवर्ण में प्रचलित पितृसत्ता के चरित्र को यहां की जाति व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से जोड़कर देखती हैं वह यह कहती है कि जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था के तहत स्त्री तथा दलित या अवर्ण जातियों को सबसे हीन माना गया। यलमैन को उद्धत करते हुए उमा लिखती है की नारी हिंदू सामाजिक संगठन की धुरी है नारी के चरित्र की शुद्धता हिंदू समाज के तीन आधारभूत सिद्धांतों को बनाए रखने के लिए आवश्यक माना गया। इसलिए हिंदू सामाजिक संगठन को एक बंद (चारों ओर से घेरे बंदी किया हुआ) ढांचा बनाए रखा गया है ताकि जमीन ,जोरू(स्त्री)व संगठन के भीतर कर्मकांड की शुद्धता यानी जाति व्यवस्था बनी रहे। इन तीनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नारी की यौनिकता पर पूर्ण नियंत्रण सुनिश्चित करने के लिए सांगठनिक उपक्रम किए गए।

वह कहती है कि जाति की शुद्धता बनाए रखने के लिए ही ब्राह्मण जाति की बेटियों के लिए मासिक धर्म से पहले विवाह का प्रावधान रखा गया इस जाति में स्त्रियों पर तमाम तरह की पाबंदियां इसलिए भी रखी गई ताकि वह निम्न जाति के पुरुषों से सुरक्षित रहे और जाति की शुद्धता बनी रहे। भगवत गीता में भी बताया गया है कि जब विवाह का जातीय आधार लचर हो जाता है तो हिंदू सामाजिक और नैतिक व्यवस्था का पतन होने लगता है। इससे यह जाहिर होता है कि हिंदू समाज के लोगों को हमेशा यह भय बना रहता था कि नारी को स्वविवे क अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता उनकी जाति व्यवस्था को संकट में डाल सकती है। अतः एक कठोर जाति व्यवस्था के विकृत होने की संभावना को समाप्त करने के लिए ही अनेक प्रकार के नियम बनाए गए साथ ही नारी की सहमति प्राप्त करने के रास्ते भी निकाले गए जैसे कि एक रास्ता तो पितृसत्तात्मक विचारधारा का प्रवर्तन था और दूसरा रास्ता घर के मालिक पुरुष पर नारी की पूर्ण आर्थिक निर्भरता थी। हिंदू विधि विधान के अनुसार आचरण करने वाली स्त्री के लिए हमेशा विशेष प्राधिकार आदर सम्मान तथा नियमों की अवहेलना करने वाली स्त्री के लिए सजा का प्रावधान बनाया गया। विचारधारा के रूप में स्त्री धर्म यानी पतिव्रता धर्म नारी को घुट्टी की तरह पिलाया जाता था। हर नारी का लक्ष्य इस धर्म का मन से , वाणी से कर्म से पालन करना होता था यही नारी के निर्वाण का माध्यम माना गया इस प्रकार पतिव्रता धर्म नारी का स्वयं पर लागू किया गया अनुशासन हो गया। इस पूरी प्रक्रिया में पुरुष का या पितृसत्ता का नारी पर वर्चस्व अदृश्य हो गया।

पितृसत्ता की इस संपूर्ण विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि मानव जीवन के प्रत्येक काल और समाज में पितृसत्ता उस काल और समाज की अर्थव्यवस्था में गहरी जमी है और जमी रहेंगी और समाज में स्थापित

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 01, January 2026

समस्त संस्थाएं और संगठन इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था को और मजबूत करने के लिए हमेशा एक ढाल का काम करते रहेंगे।

1980 के दशक के समाप्त होते होते विश्व में नव उदार पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभुत्व स्थापित हो गया जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों को दुनिया के किसी भी देश में अपनी पूंजी निवेश की आजादी प्राप्त हुई है इसमे राष्ट्र राज्यों का अपने देश के उद्योगों को संरक्षित करने का अधिकार समाप्त हो गया है। इस व्यवस्था ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जो भी बदलाव किए हैं उसे सही ठहरने के लिए जिस नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया उसे नव आधुनिकतावाद कहते हैं इस नव आधुनिकतावाद ने 1980 और 90 के दशक में महिलाओं संबंधी होने वाले अध्ययनों समेत ज्ञान की सभी विधाओं को प्रभावित किया है अतः इस नव आधुनिकतावाद के विचार में अब पितृसत्तात्मक व्यवस्था को समाप्त करने के स्थान पर स्त्री समानता की बात करना शुरू किया है।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–</u>

1. Gerda learner, The Creation of Patriarchy, New York, Oxford University Press, 1986 PP- 318
2. Simone de Beauvoir, The Secound Sex का हिन्दी रूपान्तर स्त्री : उपेक्षिता, द्वारा प्रभा खेतान, दिल्ली, हिन्द पाकेट बुक्स, 1994 पृ0 48–69.
3. Maria Mies ed : Women the last colony, London, Zed Books PP-I-26.
4. कमला भसीन, पित्तृसत्ता, काली फॅार वीमन, 1994.
5. Uma Chakravarti, Conceptualising Brahmanical Partiarchy in Early India, Gender, Caste, Class and State. EPW, April 3, 1993 P-579-585.
6. Karl Marx and Engeles, Selected works Vols-3 Moscow Progessive Puclishers 1983, PP-204-247.
7. सिल्विया वैल्बी, थियोराइटिंग पेट्रीयार्की (ऑक्सफोर्ड : बेसिल ब्लैकवेल, 1990)
8. नारीवाद की विभिन्न धाराओं में पितृसत्ता के विष्लेषण के बारें में एलिसन जैगर की पुस्तक ''फेमिनिस्ट पॉलिटिक्स एण्ड ह्यूमन नेचर'' (न्यू जर्सी – रोमन एण्ड एलनहैल्ड 1993)
9. डॉ0 डी.एन. झा – प्राचीन भारत की रूपरेखा, पीपुल्स पब्लिषिंग हाउस, नई दिल्ली।
10. डॉ0 ए0के0 मित्तल – मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेषन्स, आगरा।
11. डॉ0 राजकुमार – नारी के बदलते आयाम, अर्जुन पब्लिषिंग हाउस 2005.
12. जयप्रकाष व्यास – नारी षोषण, ज्ञानदा प्रकाषन–2003।